• कविताएं...

तनहा मंज़र हैं तो क्या...

तनहा मंज़र हैं तो क्या
सात समंदर हैं तो क्या
ज़रा सिकुड़ के सो लेंगे
छोटी चादर है तो क्या
चांद सुकं तो देता है
ज़द से बाहर हैं तो क्या
हम भी शीशे के न हुए
हर सू पत्थर हैं तो क्या
हम सा दिल लेकर आओ
जिस्म बराबर हैं तो क्या
बिजली सब पर गिरती है
मेरा ही घर हैं तो क्या
तू भी सीने से लग जा
हाथ में खंज़र है तो क्या
डगर डगर भटकाती है
दिल के अंदर हैं तो क्या

■ *ध्रुव गुप्त*

साथ उनके उजाले गये

साथ उनके उजाले गये
ग़म अंधेरों में पाले गये
हक़ जो मांगा किसी ने कभी
उसपे पत्थर उछाले गये
इल्म तो साथ मेरे रहा
चोर, फिर क्या उठा ले गये
थी रक़ीबों की बारादरी
बज़्म से हम निकाले गये
आप सच बोलकर दफ़अतन
साख अपनी बचा ले गये

■ *पुष्पेन्द्र 'पुष्प'*

हाथ में गर कलम नहीं होता

हाथ में गर कलम नहीं होता,
शायरी का जन्म नहीं होता।
दूर कितने हुए सनम मुझसे,
फासला ये क्यों'कम नहीं होता,
गर वफा पर करे भरोसा दिल
बेवफाई का गम नहीं होता।
ज़िंदगी की हसीन राहों में,
आशिक़ी पे सितम नहीं होता।
एक दर्जा मिले बराबर सब,
औरतों पर जुल्म नहीं होता।
ख़ानदानी कहें जिन्हें हम-तुम,
उनकी आदत में खम नहीं होता।
फ़ज़ल ए रब रहे कहे 'रचना',
तो कभी नाम कम नहीं होता।

■ *रचना उनियाल*

• कहानी/—पद्मा सचदेव

हमवतन

गतांक से आगे...

उसकी आँखें चमकने लगीं। वह बोला, 'राजमा-चावल खाए सच में बड़े दिन हो गए। क्या राजमा पुंछ के हैं?'

मैंने कहा, 'हाँ, पुंछ के ही हैं।' वह बेहद खुश हुआ तो मैंने उसे छेड़ा, 'क्या अत्ती को चिट्ठी लिखूँ?'

वह शरमा गया। एक क्षण के लिए जैसे उसकी सारी पीड़ा काफूर बनकर उड़ गई। फिर कनखियों से मुझे देखकर बोला, 'कैसी बात करती हो बोबो! भाईजी सुनेंगे तो मार ही डालेंगे।'

वह पता नहीं जानता था या नहीं, मार डालने के लिए उसके सिर में धँसे छर्रे धीरे-धीरे जहर बनकर उसे अपने आगोश में ले रहे हैं। बेहोशी फिर उस पर तारी होने लगी थी। उसका मुँह चमक रहा था। उसके हाथों ने कसकर मेरे दुपट्टे का कोना पकड़ा हुआ था। मैंने सोचा, यह सो जाएगा तो इसकी ऊँगलियों में फँसा यह दुपट्टा कैसे निकालूँगी? मन के भीतर पहाड़ी बादलों के सीने में चमकती बिजली कड़कने लगी। मैंने उसके माथे पर हाथ फेरते-फेरते कहा, 'यहाँ से ठीक होकर तुम चनैनी जाओगे या बटोत?'

उसने यत्त करके जवाब दिया, 'पहले यहाँ से तो निकलूँ। इस चारपाई से मैं बड़ा तंग हूँ। लगता है, यह दर्द की रस्सियों से बुनी हुई है और सारी रस्सियाँ मेरे इर्द-गिर्द लिपटी हुई हैं।'

मैं उसकी दार्शनिकता पर मुग्ध हुई। नींद में जाता-जाता वह बोला, 'राजमा बहुत गलाना और मिर्चें कम डालना।'

मैंने कहा, 'ठीक है, अब तुम सो जाओ। मैं कल सुबह आऊँगी।' उसने आँखें खोलने की कोशिश की। मैंने कहा, 'सो जाओ और देखो, सिपाही घबराता नहीं है। डोगरा सिपाहियों के हौसले सिपाहियों के गीत गानेवालों के सुरों में बुलंद रहते हैं।' वह मुसकराया। उसकी मुसकराहट रोने से ज्यादा उदास थी। उसने मेरा आँचल पकड़ लिया था। उसकी साँस शिशु की साँस की तरह कोमल और स्निग्ध हो गई थी। मेरा आँचल भी उसके हाथों से छूट रहा था। मैंने धीरे से उसे खींचा और उसकी चारपाई पर हाथ धरे उसकी साँस का आरोह-अवरोह देखने लगी।

नर्स ने आकर कहा, 'ब ये चार-पाँच घंटे सोएगा बाई! तुम जाओ।'

मैंने कहा, 'नर्स, अगर तुम्हारे रहते उसे होश आ गया तो उसे कहना, मैं कल उसके लिए खाना जल्दी ही लेकर आऊँगी।'

अगले दिन खाने से डिब्बा भरकर, राजमा की खुशबू को बंद करके मैं अस्पताल में उसके वार्ड की ओर जा रही थी, तो सोच रही थी, राजमा-चावल खाकर सिपाही कितना खुश होगा। मेरी चाल तेज हो गई। स्त्री को खाना बनाकर खिलाने में अनिर्वचनीय सुख मिलता है। मेरे कदम तेज होते गए। उत्साह दौड़ने लगा। जब मैं उसके वार्ड में पहुँची तो देखा, उसके बेड पर तीन-चार सिर झुके हुए हैं। टाँग में पलस्तर चढ़ा है और सिर पर वह सफेद कफन सा भी नहीं है। वह कराह रहा था। मैं पास जाकर खड़ी हुई। रोटी के गरम डिब्बे पर टपकते अपने आँसुओं की आवाज मैं सुन सकती थी। डॉक्टर उसे देख रहे थे। यह सिपाही कोई दूसरा था। जिसके लिए मैं राजमा-चावल लाई थी, वह कहाँ चला गया? तभी मैंने देखा, कलवाली नर्स एक ट्रे रखकर जा रही थी। मैं उसके पीछे भागी। मैंने कॉरीडोर में उससे पूछा, 'सिस्टर, वह कहाँ है, जिसके लिए मैं राजमा-चावल लाई हूँ?'

सिस्टर बोली, 'उसके बाद तो उसे होश नहीं आया। कल रात ही उसे ले गए थे। यह सोल्जर आधी रात को आया है।'

मैंने उतरकर आसपास देखा, दो लोग गठरियाँ उठाए चल रहे थे। मैं उनके पीछे-पीछे हो ली। पता नहीं क्यों; उनको मैंने सिपाही के घर का पता पूछने के काबिल नहीं समझा।

बाजार में चारों तरफ देख-देखकर मैं हलवाई की दुकान ढूँढ़ रही थी। दुर्गा हलवाई की गुड़ की बर्फी का जिक्र उसने किया था। मैं धीरे-धीरे दाएँ-बाएँ देखती जा रही थी। एक गली में खड़ी कुछ औरतें नल पर पानी भर रही थीं...

नर्स के लिए यह रोज की बात थी। मैं कितनी देर वहीं खड़ी रही। फिर जाते- जाते मैंने अस्पताल के फाटक के साथ वह डिब्बा रखा और घर चली आई।

इस बात को कई बरस हो गए हैं। एक बार जम्मू जाने पर सिपाही की बड़ी याद आई तो तड़के ही मैं चनैनी की बस पर सवार हो गई। अगली सीट पर बैठे-बैठे मोड़ों की प्रदक्षिणा से निढाल होकर आँख लगी तो जगह-जगह सिपाही दिखाई देने लगा, जैसे वह मेरे साथ-साथ चनैनी जा रहा हो। पता नहीं उसके माँ-बाप, भाई, भाभी, बच्चे कैसे होंगे? और अत्ती का तो ब्याह हो गया होगा। वह कहाँ जान पाएगी, उससे ब्याह करने की एक ख्वाहिश चिता में भस्म हो चुकी है।

ठंडी पहाड़ी हवा बार-बार आकर मेरे बालों पर हाथ फिरा रही थी। ख्वाब में मुसकराते सिपाही का चेहरा मोड़ों पर झाँकने वाले सूरज की तरह चमक रहा था। मुझे लगा, वह भी मेरे साथ चनेनी जा रहा है। अभी मैं पूरी-की-पूरी सिपाही के तसव्बुर में थी कि कंडक्टर की कर्कश आवाज कानों में पड़ी, 'चलो उतरो, चनैनी, चनैनी की सवारियाँ।'

मैंने उतरकर आसपास देखा, दो लोग गठरियाँ उठाए चल रहे थे। मैं उनके पीछे-पीछे हो ली। पता नहीं क्यों; उनको मैंने सिपाही के घर का पता पूछने के काबिल नहीं समझा। बाजार में चारों तरफ देख-देखकर मैं हलवाई की दुकान ढूँढ़ रही थी। दुर्गा हलवाई की गुड़ की बर्फी का जिक्र उसने किया था। मैं धीरे-धीरे दाएँ-बाएँ देखती जा रही थी। एक गली में खड़ी कुछ औरतें नल पर पानी भर रही थीं। बे सबकी सब मुझे देखने लगीं।

एक ने पूछा, 'आप किसके घर जाएँगी?'

मैंने कहा, 'मैं दुर्गा हलवाई को ढूँढ़ रही हूँ।'

एक फूहड़ सी औरत हँसती-हँसती बोली, 'दुर्गा हलवाई की तो लॉटरी खुल गई लगती है।'

मुझे उसकी बदतमीजी पर क्रोध आ रहा था, पर उसके पहले ही दूसरी लड़की मुझे अपने साथ ले गई। रास्ते में उसने कहा, 'यह करमो बड़ी खच्चर है। कुछ मेंटली भी है। इसकी बात कोई नहीं सुनता। अब देखिए, दुर्गा हलवाई की आँखों का ऑपरेशन खराब हो गया। वह दुकान के बाहर ही चारपाई डाले पड़ा रहता है और जो कोई जाता है, उसको कोंच-कोंचकर सभी के बारे में पूछता है--कौन हो, किसके बेटे हो, तेरा बाप कहाँ है, भाई की चिट्ठी आई कि नहीं? आपको भी बड़ा बोर करेगा।' मैंने सोचा, यह बोर शब्द पहाड़ों पर भी पहुँच गया है। तभी वह एक दुकान के आगे आकर खड़ी हुई। एक हट्टा-कट्टा साँड़ सा लड़का खोया भून रहा था। उस लड़की ने कहा, 'ये शहर से आई हैं। चाचू को पूछ रही हैं।'

उसने खोया भूनते-भूनते ही कहा, 'आज वह नहीं आएगा। उसे मलेरिया हुआ है। इनको घर ले जाओ।'

ऊबड़-खाबड़ गली के सिरे पर उसका घर था। बाहर धूप में खटोला डाले दुर्गा उकड़ूँ होकर लेटा था। हम उसके करीब जाकर खड़े हो गए। उसने आहट पाकर पूछा, 'कौन है? '

लड़की ने कहा, 'चाचू, ये तुम्हें मिलाने आई हैं।'

'कौन, प्यारी हो?'

'हाँ चाचू! ये कुछ पूछना चाहती हैं।'

उसने अपना स्थान नहीं बदला, फिर बोला, 'क्या पूछना हैं? जल्दी करो, वरना खाँसी शुरू हो गई तो...'

मैंने जल्दी से कहा, 'सिपाही का पता करने आई हूँ। उसका घर कहाँ है? 'हलवाई ने कहा, 'कौन, मंगतू? अच्छा, वह सिपाही! वाह मेरे शेर, आपको भी चकमा दे गया।'

मैं हैरान होकर हलवाई को देखने लगी। उसकी बंद आँखें भी सोच में डूबी थीं। वह बोला, 'सतरोड़ा था वह। सतरोड़ा जानती हैं। राजाओं की नाजायज औलादें। उसका अपना कोई न था। वह हमेशा अपनी कहानियाँ गढ़ता था। सुना था, पाकिस्तान की जंग में मारा गया। गाँव में पटवारी को तार आया था। मेरी दुकान पर भी कभी-कभी आकर बैठता था। उसे गुड़ की बर्फी बड़ी पसंद थी।' उसे शायद मेरी चुप्पी खल रही थी। कहने लगा, 'बुआ, इस तरह के कई मंगतू हैं, जो सपने देखते-देखते उन्हें सच समझने लगते हैं। उसकी माँ कभी की मर गई थी। उसे कौन देखता? महल के बाहर उसे कोई छोड़ गया था। मेरी दुकान के थड़े पर ही पला था। सर्दियों में मेरी भट्ठी के नीचे वह और कालू पड़े रहते थे। फिर कोई उसे कंबल भी दे गया था, पर मरा सिपाही होकर। शाबाश! अब तो मेरे कालू को मरे भी काफी देर हो गई। अपनी बारी देखो कब आती है। कालू कुत्ता था, पर मंगतू उससे ऐसे बातें करता था, जैसे वह भी आदमी का बच्चा हो।' थोड़ी देर वह चुप रहा। फिर जैसे उसे ध्यान आया। कहने लगा, 'जाओ-जाओ बुआ, भीतर चलो। बहुएँ तुम्हें चाय-पानी पूछेंगी।'

इतना बोलकर वह हाँफने लगा। मेरी सुनने-बोलने की शक्ति खत्म हो गई थी। यहाँ तक साथ-साथ आता मंगतू बार-बार आँखों के सामने आ रहा था। मैं उस जगह से कदम उठाने का हौसला बुनने लगी, जहाँ मंगतू उसका परिवार, अत्ती और उसके सपने दफन हो गए थे।

-समाप्त

• शायरी...

ये ज़फ़ा-ए-ग़म का चारा, वो नजाते-दिल का आलम
तेर हुस्न दस्त-ए-ईसा, तेरी याद रू-ए-मरीयम
दिल-ओ-जां फ़िदा-ए-राहें, कभी आ के देख हमदम
सरे-कू-ए-दिलफ़िगारां, शबे आरजू का आलम

◆ ◆ ◆

तेरी दीद के सिवा है, तेरे शौक में बहारां
वो ज़मीं जहां गिरी है, तेरी गेसूओं की शबनम
ये अजब क़यामतें हैं, तेरी रहगुज़र से गुज़रा
न हुआ कि मर मिटे हम, न हुआ कि जी उठे हम

◆ ◆ ◆

लो सुनी गयी हमारी, युं फिरे हैं दिन कि फिर से
वही गोशा-ए-क़फ़स है, वही फ़स्ले-गुल का आलम

-फैज़ अहमद फ़ैज़

• कहां मैं अभी तक...

कहां मैं अभी तक नज़र आ सका हूं
ख़ुदा जाने कितनी तहों में छुपा हूं
ये किस न सदा दी मुझे ज़िंदगी ने
मगर मैं तो सदियां हुईं मर चुका हूं
ये कह कर तो मंज़िल ने दिल तोड़ डाला
जहां से चला था वही मरहला हूं
ये दिलचस्प वादे ये रंगीं दिलासे
अजब साज़िशें हैं कहां आ गया हूं
तेरा क़र्बु हासिल हुआ भी तो क्या है
वही फ़ासला था वही फ़ासला हूं

—दिल अय्यूबी